।। शुद्धातम का लो आधार, कहने की विधियाँ हैं चार ।।

प्रत्येक आत्मार्थी की भावना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट कर जन्म-मरण से मुक्त होकर शाश्वत स्वाधीन निराकुल सुखमयी सिद्धदशा प्रगट करने की होती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह निरन्तर तत्त्व-अभ्यास में प्रयत्नशील रहता हुआ परमशुद्धनय अथवा परमभावग्राही द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत एक अखण्ड अभेद सामान्य त्रिकाली ज्ञायकभाव की निर्विकल्प अनुभूति प्रगट करने हेतु उद्यमवन्त रहता है।

प्रमत्त-अप्रमत्त रहित एक ज्ञायकभाव ही श्रद्धा का श्रद्धेय (दृष्टि का विषय) ज्ञान का ज्ञेय एवं ध्यान का ध्येय है।समयसारादि अध्यात्म ग्रन्थों में अनेक तरीकों से ज्ञायक स्वभाव का वर्णन करते हुए उसके अवलम्बन की विधि बताई गई है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी ४५ वर्षो तक अनवरत रूप से पर्यायदृष्टि छुड़ाकर द्रव्यदृष्टि प्रगट करने की प्रेरणा देते रहे हैं । सी.डी. में सुरक्षित तथा ग्रन्थों में प्रकाशित उनके प्रवचन आगामी हजारों वर्षो तक अध्यात्म रसिक जीवों को स्वानुभूति का मार्ग प्रकाशित करते रहेंगे।

उनके प्रवचनों में दृष्टि के विषय अथवा उसका अवलम्बन लेने की विधि की व्याख्या मुख्यतः चार प्रकार से की गई है जो निम्नानुसार हैं :-

(१) पर्याय रहित त्रिकाली द्रव्य का अवलम्बन करो ।
(२) समस्त प्रकार के भेदों से रहित अभेद शुद्धात्मा का अवलम्बन करो ।
(३) विशेषों को सामान्य में डुबो कर एक मात्र सामान्य को देखो ।
(४) विशेषों में भी सामान्य को देखो ।

इनके अतिरिक्त (क) दो घड़ी के लिए शरीर का पड़ोसी बन जाओ,(ख) रंग राग और भेद से रहित आत्मा का आश्रय करो,(ग) एकत्व विभक्त आत्मा का अवलम्बन करो,(घ) नयपक्ष छोड़कर पक्षातिक्रान्त हो जाओ इत्यादि अनेक प्रकार से आत्मानुभूति प्रगट करने की प्रेरणा दी गई है ।

गहन चिन्तक मुमुक्षु वर्ग में प्रथम दो बिन्दु विशेष रूप से चर्चित होते हैं ।शेष दो बिन्दु भी गुरुदेव के प्रवचनों में उपलब्ध होते हैं; परन्तु सन्तुलित एवं व्यापक चिन्तन के अभाव में त्रिकाली ध्रुव बनाम अभेद के रूप में आग्रह भी देखे जाते हैं । अतः यहाँ उक्त चार बिन्दुओं पर विशेष चिन्तन अभीष्ट है ताकि स्वरूप का चिन्तन मनन और अनुभवन की प्रक्रिया विशेष रूप से स्पष्ट हो सके ।

(१) पर्याय रहित त्रिकाली द्रव्य का अवलम्बन करो :- यहाँ पर्याय से आशय मुख्यतया असमानजातीय मनुष्यपर्याय एवं रागादि विकारी पर्यायों से है । श्री समयसारजी में भी एकत्व-विभक्त आत्मा का परिचय देते हुए उसे प्रमत्त-अप्रमत्त भावों से रहित एक ज्ञायकभावरूप दिखाया गया है। वर्णादि से गुणस्थानपर्यन्त २६ भावों से भी आत्मा को भिन्न कहा गया है । अन्यत्र अनेक स्थलों पर सिद्ध समान शुद्ध निरञ्जन नित्य एक अखण्ड त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप आत्मा को ही ज्ञेय-श्रद्धेय और ध्येय कहा गया है । पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में सदा त्रिकाली ज्ञायकभाव पर दृष्टि देने की मुख्यता रहती है ।

प्रत्येक वस्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमय अखण्ड स्वरूप है । इन्ही चारों बिन्दुओं को द्रव्यार्थिकनय से देखा जाए तो वस्तु सामान्य,अभेद,नित्य और एकरूप है । शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के तीन भेदों में

एक उत्पाद-व्यय निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनय भी कहा गया है । परमशुद्ध निश्चयनय का विषयभूत आत्मा भी रागादि विकारी भावों से तथा आंशिक एवं पूर्ण शुद्ध पर्यायों से निरपेक्ष कहा गया है । नियमसार में तो औदयिक आदि चार भावों को परद्रव्य कहकर आत्मा को उनसे भिन्न कहा गया है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि पर्यायों से रहित त्रिकाली दव्य की बात जिनागम में अनेक स्थलों पर आई है, अतः पर्याय से दृष्टि हटाकर त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव पर दृष्टि देना अर्थात् अपने को इसरूप जानना मानना ही सम्यग्दर्शन है । दृष्टि स्वयं पर्याय है और उसका विषय ज्ञायक-भाव है । अतः ज्ञायकभाव पर्याय रहित त्रिकाली ध्रुव स्वरूप होना चाहिए । यदि ज्ञायक स्वभाव त्रिकाली न होकर क्षणिक हो जाए तो क्षणिक पर्याय-दृष्टि तो अनादि से है ही, पुनः क्षणिक ज्ञायक की दृष्टि करने का क्या प्रयोजन ?

यहाँ प्रमाण के विषयभूत द्रव्य को पर्याय रहित नहीं कहा है अपितु प्रमाण के विषय में विद्यमान त्रिकाली द्रव्य-अंश को पर्याय-अंश से रहित (कथन्चित) कहा गया है । द्रव्य और पर्याय दोनों अंश सर्वथा एक माने जायें तो द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु सिद्ध न होगी ।अतः दृष्टि के विषय को पर्याय रहित माननें से वस्तु में पर्यायों के सर्वथा निषेध की आशंका नहीं करना चाहिए ।

प्रश्नः- आपने त्रिकाली द्रव्य को प्रमाण के विषयभूत द्रव्य का अंश कहा है, तो क्या अंश के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है ?

उत्तरः- स्वानुभूति दर्शन में यही प्रश्न उठाया गया हैं । वहाँ समाधान करते हुए कहा गया है कि प्रमाण की अपेक्षा त्रिकाली द्रव्य अंशरूप है परन्तु दृष्टि की अपेक्षा वह पूर्ण है । परिवार में बड़े-छोटे सभी भाई परिवार के अंश हैं' पूर्ण परिवार नहीं, परन्तु अपनी पत्नी की दृष्टि में वे ही उनके सर्वस्व हैं । जरा विचार करो कि जो त्रिकाली अंश अनादि-अनन्त नित्य शुद्ध एकरूप है, वह अपूर्ण कैसे हो सकता है? क्या पर्यायगत अशुद्धता होने से वह अशुद्ध हो गया ? और पर्याय में शुद्धता प्रगट होने पर वह शुद्ध होगा ? यदि नहीं तो अनन्त गुणों का अखण्ड पिण्ड होने से अब उसमें क्या कमी है जिसकी पूर्ति पर्यायों द्वारा होगी ? अतः त्रिकाली स्वभाव में अपनापन होने पर ही 'मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण' की अनुभूति होने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होगा ।अधिक गहन चिन्तन के लिए आदरणीय बाबू जुगलकिशोरजी युगल' द्वारा रचित लेख 'पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी और उनका जीवन दर्शन' बारम्बार पठनीय है ।

(२) भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद का लक्ष्य करना :-

प्रमाण विवक्षा में वस्तु सत्-असत् नित्य-अनित्य एक-अनेक, तत्-अतत् भेद-अभेद आदि अनन्त धर्मात्मक है । आत्मानुभूति के प्रयोजन से एक, अभेद, सामान्य और नित्य पक्ष को मुख्य करके भूतार्थ तथा अनेक, भेद, विशेष और अनित्य पक्ष को गौण करके अभूतार्थ कहा जाता है रागी जीव को भेद का लक्ष्य करने पर विकल्प उत्पन्न होते हैं जो कि निर्विकल्प अनुभूति में बाधक हैं, इसलिए आत्मानुभूति के लिए भेद का लक्ष्य छोड़कर अखण्ड अभेद एक स्वभाव का आश्रय करने की प्रेरणा दी जाती है ।

परमभावग्राही द्रव्यार्थिकनय अथवा परमशुद्धनय के विषयभूत अभेद अखण्ड एक निर्विकल्प शुद्धात्मा में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव/ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य/ गुण-पर्याय/ गुण-गुणी/ पर्याय-पर्यायी आदि किसी भी प्रकार का भेद, भेद-कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय अथवा अनुपचरित सद्भूत

व्यवहारनय का विषय कहा गया है । शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के तीन भेदों में द्रव्यार्थिकनय के विषय को उत्पाद-व्यय, भेद-कल्पना एवं कर्मोपाधि से निरपेक्ष कहा गया है । पाण्डे राजमल जी ने भी कलश टीका में अभेद निर्विकल्प वस्तु को स्वद्रव्य तथा भेद-कल्पना को परद्रव्य कहा है ।

इस प्रकार जिनागम में अनेक स्थलों पर भेद से दृष्टि हटाकर अभेद का आश्रय करने की प्रेरणा दी गई है ।

अभेद की चर्चा करते समय प्रायः यह समझ लिया जाता है कि अभेद का अवलम्बन करने से पर्याय भी दृष्टि के विषय में शामिल हो जायेगी, इसलिए अभेद का अवलम्बन नहीं करना अपितु त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक स्वभाव पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होगा ।

इस प्रकरण पर ऊहापोह करना ही इस लेख का मुख्य प्रयोजन है । वास्तव में अभेद का आशय न समझने से ही उसके अवलम्बन में पर्याय शामिल होने का भ्रम खड़ा होता है । अभेद का मतलब गुण पर्याय के भेद सहित वस्तु नहीं, अपितु उत्पाद-व्यय-ध्रुव अथवा गुण-पर्याय के भेद से भी रहित निर्विकल्प चैतन्य वस्तुमात्र है । अभेद का अर्थ भेद रहित होता है, भेद को शामिल करना नहीं । पण्डित टोडरमलजी ने लिखा है ।'सर्वभेद जिसमें गर्भित हैं ऐसा चैतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है'।भेद गर्भित हैं अर्थात् भेद पर दृष्टि नहीं देना । यद्यपि सम्पूर्ण पर्यायें वस्तु में अभेद रूप से शामिल हैं, तथापि गुण-पर्याय-रूप भेद भी हैं' ऐसा विकल्प हुआ तो भेद गर्भित कहाँ रहे ? वे तो उदित हो गए ।

वास्तव में जो ज्ञायकभाव सामान्य एकरूप है, वही त्रिकाली है, वही नित्य है, वही ध्रुव है, और वही अभेद है । ये सभी विशेषण दृष्टि के विषय अथवा ध्यान के ध्येयभूत पारिणामिक भाव के ही हैं । समयसार के सातवें कलश मे कहा है कि आत्मा नवतत्त्वरूप परिणमित होते हुए भी अपने एकत्व को नहीं छोड़ता । पर्याय-दृष्टि से नौ भेद दिखाई देते हैं परन्तु द्रव्य-दृष्टि से आत्मा अभेद एकरूप ही दिखेगा ।

यदि अभेद के साथ भेद अर्थात् गुण-पर्यायों को भी लक्ष्य में लिया जाए तो यह प्रमाण का विषय होगा, शुद्धनय का नहीं । अभेद में तो भेद गौण होता है, उदित नहीं । श्लोक वार्तिक में अंशी को प्रमाण का विषय न कहकर द्रव्यार्थिकनय का विषय कहा गया है ।

जिसप्रकार अनेक राज्यों और जिलों के भेद होने पर भी भारत अखण्ड है उसी प्रकार अनन्त गुणों और पर्यायों में व्याप्त द्रव्य भी अखण्ड अभेद अविनाशी ध्रुव तत्त्व है ।

जरा विचार कीजिये कि जो अभेद एकरूप स्वभाव है वह क्षणिक है या शाश्वत् ? अनित्य है या नित्य ? यदि क्षणिक या अनित्य माना जाए तो वह एक कालांश होगा, अभेद कैसे होगा ? जो अभेद अर्थात् गुण-पर्याय के भेदों से रहित होगा वह त्रिकाली एकरूप ध्रुव ही होगा अन्यथा अभेद स्वरूप भी मात्र एक गुण या पर्यायरूप होने से उसका अभेद स्वरूप नष्ट हो जाएगा ।

वस्तुतः विशेषों में व्याप्त होने से द्रव्य को सामान्य, अनन्तगुणों में व्याप्त होने से एक तथा त्रिकालवर्ती प्रवाहक्रम में व्याप्त होने से उसे ध्रुव या नित्य कहते है । गुण-पर्यायों में अखण्डरूप से व्याप्त होने से द्रव्य को अभेद भी कहते हैं तथा अपने प्रदेशों में अखण्डपने व्याप्त होने की अपेक्षा भी उसे अभेद कहते हैं ।

जरा सोचिये ! पूज्य गुरुदेव श्री जितना वजन त्रिकाली ध्रुव पर दृष्टि करने पर देते हैं उतना ही वजन रंग राग और भेद से भी भिन्न अखण्ड द्रव्य पर दृष्टि करने पर देते हैं । उनके प्रवचनों में सैकड़ों बार अभेद अखण्ड त्रिकाली ध्रुव नित्य सामान्य आदि अनेक उद्गार ध्यानाकर्षक हैं । समयसार गाथा ७३ की टीका में भगवान आत्मा के लिए प्रत्यक्ष अखण्ड तथा नित्यउद्योतरूप विशेषण एक साथ दिए गए हैं ।

इसप्रकार अभेद पर लक्ष्य करने से गुण-पर्याय का भेद भी दिखेगा- ऐसा नहीं समझना चाहिए, अपितु अभेद के लक्ष्य से गुण-पर्याय के भेद से रहित एक अखण्ड त्रिकाली ज्ञायकभाव ही आएगा । ध्रुव और अभेद दोनों परस्पर विरोधी नहीं अपितु पारिणामिकभाव के कालवाची और भाववाची विशेषण हैं ।

इसीप्रकार एक पक्ष को यह शिकायत है कि त्रिकाली ध्रुव कहकर आपने अभेद वस्तु में भेद तो कर ही दिया, अतः त्रिकाली ध्रुव का अवलम्बन भी भेद का अवलम्बन ही हुआ । अभेद में तो द्रव्य-गुण-पर्याय सब आ गए, उसके टुकड़े क्यों करते हो ?

वास्तव में त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन में अखण्ड वस्तु के एक अंश का अवलम्बन नहीं अपितु पर-पदार्थों और गुण-पर्यायों के भेद से भी दृष्टि हटाकर एक अभेद ध्रुव चैतन्य स्वभाव की मुख्यता से सम्पूर्ण वस्तु के अवलम्बन की बात है । द्रव्य-दृष्टि से आत्मा अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव चैतन्य स्वरूप है । त्रिकाली स्वभाव की मुख्यता से कथन होने पर भी उसके अवलम्बन में त्रिकाली या क्षणिक सम्बन्धी भेद का विकल्प नहीं रहता अपितु अखण्ड द्रव्य का अवलम्बन होने से पक्षातिक्रान्त अनुभूति होती है ।

खीर खाते समय उसके मीठे स्वाद की मुख्यता रहती है परन्तु खीर में से अकेला स्वाद तोड़कर नहीं खाया जाता । खाने में सम्पूर्ण खीर है । और वेदन में स्वाद रहता है । इसीप्रकार त्रिकाली ध्रुव चैतन्य स्वभाव की मुख्यता से अखण्ड वस्तु का अवलम्बन लिया जाता है, मात्र त्रिकाली अंश को तोड़कर उसका अवलम्बन नहीं लिया जाता । उत्पाद-व्यय-ध्रुव का भेद तो भेद-कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय है, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय अथवा शुद्ध निश्चयनय का विषय तो भेद-कल्पना निरपेक्ष अखण्ड वस्तु है ।

निर्णय के काल में गुण-पर्याय अथवा नवतत्त्व सम्बन्धी भेद का अवलम्बन भी हेय है तथा अभेद शुद्ध चिद्रूप उपादेय है - ऐसे विकल्प होते हैं, परन्तु अनुभूति में ऐसे विकल्पों का भी शमन हो जाता है और एक चैतन्य मात्र वस्तु के अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वाद का वेदन होता है । कहा भी है -'तदेव साक्षादमृतं पिबन्ति' । क्षणिक पर्यायों का अवलम्बन छुड़ाने के लिए त्रिकाली की मुख्यता से अभेद वस्तु का कथन किया जाता है, भेद पर दृष्टि रखने के लिए नहीं ।

इसप्रकार त्रिकाली ध्रुव के अवलम्बन के कथन में भी अभेद नित्य शुद्ध चैतन्य स्वभाव का ही अवलम्बन लेने की बात है उत्पाद-व्यय-ध्रुव के भेद में उलझने की नहीं ।

(३) विशेषों को सामान्य में डुबो कर मात्र सामान्य को देखो :-

वास्तव में क्रमाक दो और तीन के कथनों में मात्र कथन शैली का ही अन्तर है। द्रव्य-गुण-पर्याय में भेद न देखना और मात्र सामान्य को ही देखना एक ही बात है। विशेषों को सामान्य में डुबोने से आशय विशेषों को गौण करके जिस सामान्य के वे विशेष है उस सामान्य को देखने से है।

प्रवचनसार गाथा १२६ में ज्ञान तत्त्व की सिद्धि होने पर शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है-इस तथ्य का उल्लेख करते हुए आचार्य अमृतचन्द्रदेव कहते हैं :-

''इस प्रकार जो पुरुष कर्ता, करण, कर्म और कर्मफल आत्मा ही है'' -यह निश्चय करके परद्व्यरुप परिणमित नहीं होता, वही पुरुष जिसका परद्रव्य के साथ सम्पर्क रुक गया है और जिसकी पर्यायें स्वद्रव्य के भीतर प्रलीन हो गई है- ऐसे शुद्धात्मा को उपलब्ध करता है।

इस गाथा का भाव खोलते हुए टीकाकार आचार्यदेव कलश क्रमांक सात में कहते हैं ''सामान्य मज्जित समस्त विशेषजात:'' इसका भावानुवाद डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल प्रवचनसार अनुशीलन में निम्नानुसार करते है :-

जितने बताई भिन्नता भिन्न द्रव्यनि से।
और आत्मा एक ओर को हटा दिया॥
जिसने विशेष किये लीन सामान्य में।
और मोह लक्ष्मी को लूटकर भगा दिया॥
ऐसे शुद्धनय ने उत्कट विवेक से ही।
निज आत्मा का स्वभाव समझा दिया॥
और सम्पूर्ण इस जग से विरक्त कर।
इस आत्मा को निजातम में लगा दिया॥

विशेषों को सामान्य में मग्न करने का भाव स्पष्ट करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री दिव्यध्वनि सार भाग-३ पृष्ठ ४२१-४२२ पर कहते हैं ''आत्मा विकार को दूर करने वाला है और शुद्धता को प्रगट करनेवाला है-ऐसे भेद शुद्ध स्वभाव में नहीं हैं। कर्ता-करण आदि के भेद पर्याय में होते हैं, जो स्वभाव तरफ दृष्टि रखने से नाश को प्राप्त होते हैं और पर्यायें द्रव्य के अन्दर डूब जाती हैं।

इसलिए शुद्धनय विशेषों को द्रव्य सामान्य में मग्न करता है अर्थात् पर्यायबुद्धि, अंशबुद्धि, रागबुद्धि का नाश करता है और स्वभावबुद्धि उत्पन्न करता है। ऐसा शुद्धनय वर्तमान पर्याय को अभेद शुद्धस्वभाव में लीन करता है, इसलिए मिथ्यात्व राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते।''

प्रवचनसार गाथा ८० की टीका में भी द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने के संदर्भ में पर्यायों को और गुणों को द्रव्य में संक्षेपण करने की बात कही गई है। इस संदर्भ में ८० वीं गाथा का भावार्थ विशेष ध्यान देने योग्य है :-

''इस प्रकार त्रैकालिक निज आत्मा को मन के द्वारा ज्ञान में लेकर - जैसे मोतियों को और सफेदी को हार में ही अन्तर्गत करके मात्र हार ही जाना जाता है, उसी प्रकार पर्यायों को और चैतन्य गुण को आत्मा में ही अन्तर्गर्भित करके केवल आत्मा को जानने पर परिणामी-परिणाम-परिणति के भेद का विकल्प नष्ट हो जाता है, इसलिए जीव निष्क्रिय चिन्मात्रभाव को प्राप्त होता है और उससे दर्शनमोह निराश्रय होता हुआ नष्ट

''पहले सामान्य-विशेष को (द्रव्य पर्याय) को जानकर फिर विशेषों को सामान्य में अंतर्गत किया जाता है, किन्तु जिसने सामान्य-विशेष का स्वरुप न जाना हो वह विशेष को सामान्य में अन्तर्लीन कैसे करे ?

पहले अज्ञान के कारण द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद करता था इसलिए उन भेदों के आश्रय से मोह रहा था; किन्तु जहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय को अभेद किया, वहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद दूर हो जाने से मोह क्षय को प्राप्त होता है। द्रव्य-गुण-पर्याय की एकता ही धर्म है और द्रव्य-गुण-पर्याय के बीच भेद ही अधर्म है।''

इसप्रकार भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद का लक्ष्य करने की प्रक्रिया में ही विशेषों को सामान्य में अन्तर्लीन करने की या डुबोने की बात आती है। प्रवचनसार गाथा ८० तथा १२६ और कलश ७ पर पूज्य गुरुदेवश्री का सम्पूर्ण प्रवचन गहराई से पढ़ा जाए तो यह विषय और स्पष्ट हो जाएगा।

श्री समयसार में गाथा ४९ की टीका में समागत अव्यक्त के बोलों में कहा गाया है कि चित्सामान्य में चैतन्य की समस्त व्यक्तियों अन्तर्गर्भित हैं। इस कथन में भी यही भाव समाया हुआ है कि विशेष सामान्य के ही अंश हैं अत: उसका लक्ष्य छोड़कर सामान्य का लक्ष्य करना चाहिए।

(४) विशेषों में भी सामान्य को देखो :-

वास्तव में यह मतिश्रुतादि क्षयोपशमज्ञान पर्याय में ज्ञान सामान्य को देखने की बात है। अनुभूति स्वरुप भगवान आत्मा ''आबाल गोपाल सबको सदाकाल अनुभव में आ रहा है।'' श्री समयसार गाथा १७-१८ की टीका का यह कथन वर्तमान ज्ञान पर्याय में परिणमते हुए ज्ञायक स्वभाव की ही घोषणा कर रहा है। इन्हीं पंक्तियों का भाव आदरणीय बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' ने सिद्ध पूजन की जयमाला में खोलते हुए लिखा है :-

ज्ञान की प्रतिपल उठे तरंग झाँकता उसमें आतमराम।
अरे आबाल सभी गोपाल सुलभ सबको चिन्मय अभिराम॥

जब हम स्वर्ण के हार में स्वर्ण का या मिट्टी के शेर में मिट्टी का अनुभव कर सकते हैं तब मतिश्रुतादि ज्ञान विशेषों में ज्ञान सामान्य का अनुभव क्यों नहीं कर सकते ?

समयसार परिशिष्ट में आत्मा को ज्ञान लक्षण से लक्षित होना कहा है। क्योंकि ज्ञान प्रसिद्ध है। तथा

स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है। यह प्रसिद्धि तथा स्वसंवेदन प्रत्यक्षपना पर्याय में ही तो है क्योंकि द्रव्य गुण तो शक्ति स्वरुप हैं।

यदि ज्ञान लक्षण पर्याय में भी प्रसिद्ध न हो अर्थात् ज्ञान स्वभाव पर्याय में भी विद्यमान न हो तो किसके आधारे द्रव्यस्वभाव की पहचान और प्रतीति होगी ?

समयसार गाथा १५ की टीका में भी ज्ञेयाकार ज्ञान का तिरोभाव तथा सामान्य ज्ञान का आविभाव करके आत्मानुभूति की बात कही गई है। ज्ञान की जो पर्याय ज्ञेयों को प्रकाशित करती हुई ज्ञेयाकाररुप परिणमित हो रही है वही पर्याय उन ज्ञेयाकारों में अपने ज्ञानस्वरुप ही परिणमन कर रही है, ज्ञेयस्वरुप नहीं। वस्तुतः ज्ञेयाकार परिणमन ज्ञान का ही परिणमन-प्रकाशन है। अतः ज्ञेयाकारों में एक सामान्य ज्ञान ही उछलता होने से वही अनुभव करने योग्य है।

यद्यपि जैन दर्शन में वस्तु सामान्य-विशेषात्मक कही गई है तथापि अधिक गहराई से सोचा जाए तो कारण शुद्ध पर्याय के रुप में सामान्य का विशेष तथा ज्ञान सामान्य के रुप में विशेषों के सामान्य की चर्चा भी आई है। १५ वीं गाथा की टीका में मतिश्रुतादि ज्ञान पर्यायों में विद्यमान सामान्य के आविर्भाव की चर्चा है। इस संदर्भ पर व्यक्त किए गए पूज्य गुरुदेवश्री के विचार दृष्टव्य है :-

"सामान्य ज्ञान का आविर्भाव" अर्थात् त्रिकालीभाव का आविर्भाव यह बात नहीं है। सामान्यज्ञान अर्थात् शुभाशुभ ज्ञेयाकार रहित मात्र ज्ञान की पर्याय में प्रगटता। मात्र ज्ञान, ज्ञान का अनुभव-यह सामान्य ज्ञान का आविर्भाव है। ज्ञेयाकार रहित मात्र प्रगट ज्ञान वह सामान्य ज्ञान है, इसका विषय त्रिकाली है।"

(प्रवचनरत्नाकर भाग १ (गुजराती) पृष्ठ २५९ पंक्ति १२ से १५)

न्याय ग्रंथों में तो विभिन्न द्रव्यों में भी सामान्य-विशेषपना घटित किया गया है। जैसे:- वृक्षत्व सामान्य, पशुत्व सामान्य, मनुष्यत्व सामान्य आदि; तो विभिन्न पर्यायों में भी सामान्य-विशेषपना घटित हो सकता है। क्रोध-मान-माया-लोभादि विशेषों में कषायत्व सामान्य है। मतिज्ञान के ३३६ भेदों में भी मतिज्ञान सामान्य है। अतः ज्ञानपर्याय में विद्यमान ज्ञान सामान्य को स्वीकार करने में कई बाधा नहीं है।

श्री प्रवचनसारजी में सामान्य के दो रुप बताए हैं, तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य ये दोनों त्रिकाली सामान्य के ही रूप हैं। त्रिकाली द्रव्य अपने संपूर्ण प्रदेशों में अनन्त गुणों-धर्मों में तथा त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों में व्याप्त रहता है। यही आत्मा का विज्ञानघन स्वभाव है। परन्तु यहाँ जिस ज्ञान सामान्य में विशेष ज्ञेयाकार परिणमन होता है उस ज्ञान सामान्य के आविर्भाव की चर्चा है। यह ज्ञान सामान्य पर्याय में व्यक्त जानन-जाननरूप है।

प्रश्न :- पर्याय में विद्यमान ज्ञान-सामान्य का आविर्भाव करने से तो पर्यायदृष्टि हो जाएगी जबकि सम्यग्दर्शन तो द्रव्यदृष्टि करने से होगा ?

उत्तर :- ज्ञेयाकारों के भेद का तिरोभाव (गौण) और सामान्यज्ञान के आविर्भाव से ही द्रव्यदृष्टि प्रगट होगी क्योंकि यह ज्ञान सामान्यरूप परिणमन त्रिकाली ज्ञानशक्ति का अथवा ज्ञायक का ही परिणमन है। जैसा ज्ञायकस्वभाव जानन शक्तिरूप है वैसा ही यह ज्ञानसामान्य ज्ञानमात्र व्यक्तिरूप है। इसकी प्रतीति या अवलम्बन से दृष्टि व्यक्त पर्याय में अटकने के बजाए सीधे त्रिकाली अखण्ड ध्रुव स्वभाव में जायेगी। यह व्यक्त ज्ञान सामान्य मानो त्रिकाली ज्ञायक में जाने का प्रवेश द्वार है। ५० फुट चौड़े कमरे में प्रवेश करने के लिए ५० फुट चौड़ा दरवाजा नहीं चाहिए। ३ फुट चौड़े दरवाजे से ही ५० फुट के अखण्ड कक्ष में प्रवेश हो जाएगा। यह ३ फुट का दरवाजा उस ५० फुट की चौड़ाई का ही खुला अंश है। पण्डित टोडरमलजी ने भी प्रगट ज्ञान को स्वभाव का अंश कहा है।

जब हम चश्मे को दूर से देखते हैं तो उसका काँच दिखाई देता है, परन्तु चश्मा लगाने पर काँच नहीं दिखता बल्कि उसकी पारदर्शिता में से सामने वाले पदार्थ दिखने लगते हैं। इसी प्रकार यह ज्ञान सामान्य भी वह पारदर्शी काँच है जिसके आविर्भाव से त्रिकाली ज्ञायक दिखाई देता है। अतः ज्ञान सामान्य के आर्विभाव से त्रिकाली और क्षणिक के भेद रहित त्रिकाली अखण्ड ज्ञायक स्वभाव की प्रतीति होगी। यही १५ वीं गाथा की टीका का भाव है।

इस संदर्भ में पूज्य गुरुदेव द्वारा किया गया निम्न स्पष्टीकरण भी ध्यान देने योग्य है :-

''जिसकी दृष्टि ज्ञायक पर है वह तो जानता है कि यह ज्ञान विशेष ज्ञान सामान्य में से आता है। ज्ञायक पर दृष्टि करते ही ज्ञान पर्याय का वेदन होता है इसी प्रकार ज्ञान पर्याय है तो सामान्य का विशेष परन्तु ज्ञेय द्वारा ज्ञान होने पर (ज्ञेयाकार ज्ञान होने पर) अज्ञानी को भ्रम हो जाता है कि यह ज्ञेय का विशेष है। वास्तव में जो ज्ञान पर्याय है वह सामान्यज्ञान का ही ज्ञान विशेष है। पर ज्ञेय का ज्ञान नहीं है, तथा वह परज्ञेय से भी नहीं हुआ है।''

(प्रवचनरत्नाकर भाग १ (गुजराती) पृष्ठ २६२ अन्तिम पैराग्राफ)

निम्न दो पंक्तियों में इस विषय का भाव रसप्रद ढंग से स्पष्ट हो जाता है :-

ज्ञेयाकार ज्ञान में भी कलाकार ज्ञान है।
ज्ञान में जो ज्ञान जाने वही भगवान है॥

जरा सूक्ष्मदृष्टि से विचार करें तो एक पर्याय में अनेक भाव होते हैं। कुमतिज्ञान पर्याय में 'कु' शब्द तो मिथ्यात्व के उदय को बतलाता है, मति शब्द ज्ञान के क्षयोपशम को बताता है। और ज्ञान शब्द ज्ञानमात्र पारिणामिकभाव को बताता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कुमतिज्ञान पर्याय में भी ज्ञानमात्र विद्यमान है।

द्रव्य संग्रह तथा तत्वार्थसूत्र आदि ग्रंथों में उपयोग के १२ भेद कहे हैं जिनमें कुमति आदि तीन अज्ञान भी शामिल हैं। अतः उपयोग सामान्य भेदरुप न होते हुए भी इन बारह भेदों के अलावा और कहाँ मिलेगा ?

इस प्रकार विशेषों में सामान्य देखने की प्रक्रिया भी विशेष को गौण करके सामान्य को मुख्य करने की प्रक्रिया ही है।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य यही है कि जिनागम में समागत इन मुख्य चार शैलियों का भाव समझकर हम सभी ज्ञायक स्वभाव का अवलम्बन लेने के लिए उद्यमवन्त हों। किसी एक कथन शैली को ही सर्वथा पकड़कर अन्य शैली से कथन करनेवाले साधर्मियों को मिथ्यादृष्टि घोषित न करें।

इन चार शैलियों को उल्लेख करनेवाले सैंकडों आगम वचन ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं, परन्तु यहाँ कुछ महत्वपूर्ण वचनों के माध्यम से ही अपनी बात कहने का प्रयत्न किया गया है।

गहन चिन्तक विद्वत्जनों से विनम्र अनुरोध है कि इस विषय पर अपने विचारों से अवगत कराकर मुझे अनुग्रहीत करने का कष्ट अवश्य करें।

१४ नवम्बर २००८

पंडित श्री अभयकुमारजी जैन
१७ कहान नगर, लाभ रोड, देवलाली
०२५३ - २४९५३९३